प्रथम अध्याय

मीराँबाई की जीवनी एवं रचनाओं का परिचय —

प्रस्तावना —

मध्ययुगीन भक्ति-आंदोलन की आध्यात्मिक प्रेरणा ने कबीर, सूरदास, तुलसीदास जैसे अनेक भक्त - कवियों को ,सन्तों को जन्म दिया । उनमें राजस्थान की मीराँबाई की गणना भी गर्व के साथ की जाती है । उन्होंने अनन्यता और तन्मयता से कृष्ण-भक्ति की जिससे भक्ति के क्षेत्र में वे अद्वितीय और अमर बन गईं । उन्हें राजस्थानी, हिंदी और गुजराती की सर्वश्रेष्ठ भक्त-कवयित्री माना जाता है । उनके समकालीन भक्तों तथा सन्तों के द्वारा उनकी कीर्ति का विस्तार तो हुआ ही , किन्तु आधुनिक विद्वान भी उनकी रचनाओं की गरिमा स्वीकार करते हैं ।

कृष्ण-भक्ति परम्परा में मीराँबाई का नाम आदर सहित लिया जाता है । शैशव से ही मीराँबाई को यह भक्ति का वरदान मिला था । गिरिधर की

पूजा, भक्ति और उपासना में ही उनका जीवन बीता। मीराँबाई कृष्ण-भक्ति में इतनी डूबी हुई थी कि, संसार के प्रति उन्हें कोई तात्पर्य ने था। जगत की निःसारता को मीराँबाई ने जहाँ-तहाँ प्रकट किया है।

मीराँ की भक्ति प्रेम की साधना है। मीराँबाई ने गिरधर को पति, स्वामी, प्रीतम के रूप में स्वीकारा था। इसी प्रेम की व्याकुलता और भक्ति की तन्मयता को मीराँबाई ने अपने पदों में प्रकट किया है। उनका काव्य प्रेमभाव-भक्ति की बहती हुई मर्मस्पर्शी धारा है। राजरानी होकर भी लोक-लाज और कुल-मर्यादा को त्याग कर कृष्ण - भक्ति में लीन रहने वाली सन्त मीराँबाई का व्यक्तित्व अनूठा और अद्वितीय है।

भारत के अन्य बहुत से श्रेष्ठ सन्तों, कवियों की भाँति मीराँबाई का जीवन-वृत्तान्त भी तर्कों एवं अनुमान का विषय बना हुआ है। मीराँबाई एक विशिष्ट राजघराने से सम्बध्द होने के कारण केवल कवयित्री ही नहीं तो एक ऐतिहासिक व्यक्ति भी है। परन्तु ऐसी प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण कवयित्री के समय का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। उनकी रचनाओं की कोई प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति उपलब्ध न होने से उनके सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है।

मीराँबाई तथा उनके साहित्य पर आज तक विपुल मात्रा में संशोधन - कार्य हुआ है और हो भी रहा है, किन्तु उनके जीवन आदि के बारे में ठोस निर्णय नहीं हो सका है। फिर भी विद्वानों ने ऐतिहासिक ग्रन्थ, शिलालेख, जनश्रुतियाँ, लोकगीत आदि के आधार पर मीराँबाई के जीवन-चरित्र पर प्रकाश डालने का यत्न किया है।

<u>जन्म-तिथि और जन्म-स्थान</u> --

मीराँबाई की जन्म-तिथि के सम्बन्ध में मत भिन्नता है क्योंकि, इस बारेमें मीराँ का समकालीन कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। मीराँ के पदों में केवल एक पंक्ति ऐसी मिलती है, जिसमें मीराँ के जन्म का संकेत मिलता है --

रास पूणो जणामिया री राधका अवतार [१]

किन्तु इसमें वर्ण का संकेत न होने से इस उक्ति का कोई महत्त्व नहीं है।

मीराँबाई से सम्बन्धित कुछ ऐतिहासिक घटनायें तथा भाटों की हस्तलिखित बहियों के आधार पर डा. प्रभात ने अपने शोध-ग्रंथ में मीराँ की जन्म-तिथि सं.१५६१ श्रावण सुदी १ शुक्रवार लिखी है और जन्म-स्थान कुड़की गाँव माना है, जो मेड़ता के अंतर्गत आता है।[२] उन्होंने इसकी प्रामाणिकता सिद्ध की है। अत: मीराँ की जन्म-तिथि सं.१५६१ और जन्म-स्थान कुड़की सर्वमान्य है।

मीराँ का परिवार --

मीराँ मेड़तिया राठौर वंश की थी। मेड़तिया शाखा के संस्थापक राव दूदा, जोधपुर के संस्थापक राव जोधाजी के पुत्र थे। मीराँबाई राव दूदाजी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की इकलौती सन्तान थीं।[३] मीराँ की माता के बारेमें विद्वानों ने अधिक नहीं लिखा है। वे मीराँ के बचपन में ही चल बसीं। विद्यानन्द शर्मा ने मीराँबाई की माता का नाम 'कुसुम कुँवरी' बताया है।[४]

बाल्यावस्था और शिक्षा --

मीराँबाई के बचपन की दो घटनायें प्रसिद्ध हैं जो उनके भक्ति-भाव की ओर संकेत करती हैं। मीराँ को बचपन से ही गिरिधरलाल इष्ट हो गया था। प्रथम घटना के अनुसार, एक साधु के पास गिरिधर की मूर्ति थी, जिसे देखकर मीराँ मुग्ध हो गयी। मीराँ ने उस मूर्ति की माँग की। पहले तो साधु ने वह मूर्ति नहीं दी, पर भगवान की प्रेरणा से दूसरे दिन मीराँ को वह मूर्ति सौंप दी।

दूसरी घटना के अनुसार, किसी बारात के दूल्हे को देखकर मीराँ ने अपनी माता से पूछा, 'मेरा वर कौन है ?' तब माता ने गिरिधर की मूर्ति की ओर संकेत किया। तभी से मीराँ ने गिरिधर को अपना पति माना।

माता की मृत्यु के बाद मीराँ का पालन-पोषण उनके पितामह राव दूदाजी ने किया । अपनी प्राथमिक शिक्षा मीराँ ने वहीं पायी । राव दूदाजी परम वैष्णव भक्त थे । भगवद्-भक्ति की प्रेरणा मीराँबाई को राव दूदाजी द्वारा ही मिली ।

विवाह एवं वैधव्य --

मीराँबाई के विवाह के सम्बन्ध में कई मत प्रचलित हैं । किन्तु विद्वानों ने निश्चित-सा किया है कि मीराँबाई का विवाह मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा साँगा के पुत्र कुँवर भोजराज के साथ सं.१५७३ वि. में हुआ था । यही संवत् सर्वमान्य है ।

कुँवर भोजराज अधिक दिनों तक विवाह का सुख न भोग सके । उनका देहान्त उनके पिता राणा साँगा के जीवन-काल में ही हुआ । विद्वानों ने यह तिथि सं.१५८० के आसपास मानी है । इसी तरह मीराँबाई पर विवाह के तुरंत पश्चात वैधव्य का आघात हुआ ।

संघर्ष --

मीराँ के जीवन में संघर्ष का सब से बड़ा कारण मीराँ की सत्संगति थी, जो कुल और मर्यादा के विपरित थी । लोक-लाज छोड़कर मीराँबाई साधु-सन्तों के संग उठतीं-बैठतीं, पैरों में घुँघरू बाँधकर नाचती थीं ।

माया छाड्याँ, बन्धा छाड्याँ छाड्याँ सगाँ सूयाँ ।
साधाँ ढिंग बैठ बैठ, लोक लाज खूयाँ ।[५]
तथा
म्हाँ गिरधर आगाँ णाच्यारी ।
लोक लाज कुलरा मरजादाँ जगमाँ णेक णा राख्याँ री ।[६]

मीराँ के देवर विक्रमादित्य को मीराँ की इसी भगवद्-भक्ति से चीढ़ थी । उसने मीराँ को अनेक प्रकार से कष्ट दिये थे । इसका उल्लेख मीराँ के अनेक पदों में है । उन्होंने मीराँ को विष देकर मारने की भी कोशिश की तथा पिटारी में साँप भी भेजा । किन्तु गिरिधर की शरण में गयी मीराँ का कुछ न बिगड़ा ।

राणा मेज्या विस रो प्यालो चरणामृत पी जाणा ।
काला नाग पिटारयाँ मेज्या, सालगराम पिछाणा ।[७]

वैराग्य-और मेड़ता त्याग --

मीराँ के जीवन में एक के बाद एक कइ घटनायें घटीं । शैशव में ही माता की मृत्यु, विवाह के तुरंत पश्चात वैधव्य का आघात , श्वसुर और पिता की मृत्यु, इससे मीराँ का जीवन विषादपूर्ण बन गया । साथ ही विक्रमादित्य की नीति,युध्द का हाहाकार,पारिवारिक कलह आदि से मीराँ में विरक्ति पैदा हुई और मीराँबाई मेवाड छोड़कर मेड़ता चली गयीं । जोधपुर के राव मालदेव ने मेड़ता पर आक्रमण किया, तब मीराँबाई ने मेड़ता त्याग कर तीर्थयात्रा करने का निश्चय किया ।

तीर्थयात्रा --

उपर्युक्त घटनाओं के कारण मीराँबाई में वैराग्य भाव जागृत हुआ और सब कुछ छोड़कर वे वृन्दावन चली गयीं । वृन्दावन में उस समय चैतन्य सम्प्रदायी श्री.जीवगोस्वामी रहते थे । मीराँबाई जब उनसे मिलने गयीं तो उन्होंने कहला भेजा कि, ` मैं स्त्रियों से नहीं मिलता । तब मीराँबाई ने कहा -` मैं तो अब तक समझती थी कि वृन्दावन में भगवान् कृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और अन्य सभी लोग केवल गोपी वा स्त्री-रूप हैं, मुझे आज ज्ञात हुआ है कि, भगवान् के अतिरिक्त अपने को पुरुष समझने वाले यहाँ और भी विद्यमान हैं ।`[८] इस कथन से जीवगोस्वामी अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने मीराँ से क्षमा प्रार्थना की ।

उपर्युक्त प्रसंग मीराँ की वृन्दावन यात्रा का प्रमाण है । वृन्दावन से मीराँ द्वारिका चली गयीं और अंत तक वहीं रहीं ।

गुरु -

मीराँबाई के गुरु के सम्बन्ध में विद्वानों में कई मत प्रचलित हैं । अनेक सम्प्रदायों के लोगों ने उन्हें अपने सम्प्रदाय में समाविष्ट कर मीराँ के गुरु के संबंध

में अनेक कल्पनाओं एवं तर्कों को प्रस्तुत किया है। मीराँ के गुरु के रूप में रैदास, रामानन्द, विठ्ठल, हरिदास दर्जी, चैतन्य महाप्रभु, जीव गोस्वामी , माधवपुरी, रूपगोस्वामी ,गजाधर आदि नामों की चर्चा होती है। किन्तु इनमें से कोई भी मीराँ का गुरु सिध्द नहीं होता।

मीराँ के गुरु के संदर्भ में ८४ और २५२ वार्ताओं के अनुसार स्पष्ट है कि, मीराँ ने वल्लभ - सम्प्रदाय में दीक्षा नहीं ली। इससे यह अनुमान होता है कि, मीराँ ने किसी सम्प्रदाय में दीक्षा नहीं ली थी।[९]

मीराँबाई के पद से भी यह बात स्पष्ट होती है।

दरद की मार्याँ दर दर डोल्याँ वैद मिल्या णा कोय।
मीराँ री प्रभु पीर मिटाँगा जब वैद साँवरो होय।[१०]

मीराँबाई ने स्वयं कहा है कि, दर दर भटकनेपर भी उनकी वेदना को दूर करनेवाला वैद्य नहीं मिला। अगर स्वयं श्री कृष्ण उनके लिए वैद्य बनकर आयें और उनका उपचार करें तो यह दर्द मिट सकेगा।

विद्वानों ने इसी आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि, मीराँबाई का न कोई गुरु था और न कोई सम्प्रदाय। गिरिधर ही उनके गुरु हैं, मार्गदर्शक हैं, सर्वस्व हैं।

मृत्यु-तिथि --

जन्म-तिथि के समान मीराँबाई की मृत्यु-तिथि के विषय में भी लोगों में मत-भिन्नता है। मु.देवी प्रसाद, आ.रामचंद्र शुक्ल,बाबू ब्रजरत्नदास, आ.परशुराम चतुर्वेदी, पं.गौरी शंकर ओझा, पं.सूर्यनारायण चतुर्वेदी जैसे विद्वानों ने मीराँबाई की मृत्यु-तिथि सं.१६०३ वि.मानी है। डॉ.हीरालाल प्रसाद सिंह ने भी इसी तिथि की पुष्टि तथा सिद्धता की है। उनके मतानुसार तथ्यों के आधार पर मीराँबाई की मृत्यु-तिथि सं.१६०३ वि.ही प्रामाणिक ठहरती है।[११]

अत: सं.१६०३ वि.यह मीराँ की मृत्यु-तिथि सर्वमान्य है।

मीराँबाई के जीवन-चरित्र के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। किन्तु अब तक किये गए अनुसंधानों के अनुसार उपर्युक्त सारे तथ्य अब निश्चित-ही हो गए हैं। जब तक नया तथा ठोस संशोधन नहीं होता तब तक ये ही तर्क मान्य हैं और रहेंगे।

मीराँबाई की रचनायें —

भक्तिमति मीराँ के भक्ति-भावना से ओतप्रोत गीत अपनी, प्रभावात्मकता तथा मार्मिकता के कारण भक्ति-युग में तो लोकप्रिय हुए ही थे, आज भी उनकी लोकप्रियता कम नहीं हुई। राजस्थान गुजरात से लेकर महाराष्ट्र तक आज भी उनके गीत गूँजते हैं। उनका काव्य हिन्दी साहित्य की अक्षय-निधि है।

मीराँ की प्राथमिक शिक्षा मेड़ते में पितामह राव दूदाजी की देख-रेख में हुई थी। उन्हें संगीत एवं काव्यकला का प्रशिक्षण भी दिया गया था। उनकी ससुराल में, मेवाड़ के राजघराने में भी संगीत और साहित्य का पूरा प्रभाव था। महाराणा कुम्भा जैसे साहित्य और संगीत के महान प्रेमी हो चुके थे, जिनकी प्रसिध्दि और कीर्ति चारों ओर फैल चुकी थी। अत: मीराँ को अपनी ससुराल में भी काव्य-संगीत आदि की दृष्टि से पूर्णत: अनुकूल वातावरण मिला। पति भोजराज के जीवन-काल में उनके कार्य-कलाप में बाधा नहीं पहुँची होगी, परन्तु उनके पश्चात् भी मीराँबाई ने इन्हीं कलाओं का उपयोग तथा विकास किया। उनके हृदय की वेदना उनके पदों में प्रकट हो गयी, जिन्हें वे अपने इष्टदेव के सामने प्रस्तुत करती थीं, गाती थीं।

विद्वानों की खोजों के आधार पर मीराँ-कृत कही जानेवाली रचनायें निम्नानुसार हैं।

(१) गीत गोविंद की टीका
(२) नरसी रो माहेरो
(३) राग सोरठ का पद-संग्रह
(४) मलार राग
(५) राग गोविन्द
(६) सतभामाइं रुसणं
(७) मीरांनी गरबी
(८) रुक्मिणी मंगल
(९) नरसी मेहता नी हुंडी
(१०) चरीत (चरित्र)
(११) फुटकर पद

इन रचनाओं का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार हैं।

(१) गीत गोविन्द की टीका —

' गीत गोविन्द ' संस्कृत कवि जयदेव की रचना है। प्रस्तुत ग्रंथ उसीकी टीका है। मीरांबाई को इतनी शिक्षा ही प्राप्त नहीं थी और न ही उनके पास इतना समय होता था कि वे किसी पर टीका आदि लिखें। वे तो अपने आराध्य में सदैव तन्मय रहतीं। अत: विद्वानों के मतानुसार ' गीत-गोविन्द की टीका ' मीरां कृत नहीं है। कुछ विद्वानों का मत है कि, इसकी रचना महाराणा कुम्भा ने की थी।

(२) नरसी रो माहेरो —

इस कृति का नाम ' नरसी जी को माहेरो ' वा ' नरसीजी का माहेरा ' वा ' मायरा ' के रूप में भी मिलता है। ' माहेरो ' का अर्थ ' मात देना ' है। इस कृति में नरसी भक्त के मात देने की कथा का वर्णन किया गया है। इस कृति की

प्रामाणिक प्रति अभी तक नहीं मिल सकी है। दूसरी बात, इसकी भाषा खडीबोली तथा ब्रज मिश्रित है और मीराँबाई के पदों की भाषा राजस्थानी है। अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि, यह रचना कदाचित मीराँबाई की न होकर किसी मीरादास नामक वैष्णव साधु की है और उसका रचना-काल भी संभवत: सं.१७४९ और सं.१८८७ के बीच का समय है।[१२]

अत: यह मीराँबाई की रचना नहीं हो सकती।

(३) राग सोरठ के पद --

मिश्रबन्धुओं ने इसकी चर्चा की है। इसमें मीराँ के अतिरिक्त नामदेव और कबीर के भी राग सोरठ के पद संगृहीत हैं। अत: यह मीराँबाई की स्वतंत्र रचना नहीं है।

(४) मलार राग --

इस पुस्तक का प्रथम उल्लेख पं.ओझाजी ने किया है। संगीत के क्षेत्र में इस राग का विशेष महत्त्व है। यह केवल 'मल्हार राग' के पदों का संकलन मात्र है। मीराँबाई की यह कोई स्वतंत्र रचना नहीं।

(५) राग गोविन्द --

आ.रामचन्द्र शुक्ल ने इसे मीराँ की कृति मान लिया है। तथापि इस नाम की कोई प्रामाणिक कृति मीराँ के नाम से उपलब्ध नहीं हुई है। विद्वानों के मतानुसार जिन पदों में मीराँ ने गोविन्द की महिमा का वर्णन किया है, उन्हीं पदों के संग्रह को 'राग गोविन्द' ऐसा नाम दिया है। इसीलिए इसे मीराँ की स्वतंत्र रचना नहीं माना जा सकता।

(६) सतभामानुं रूसणां --

यह अस्सी चरणों की संक्षिप्त रचना है। श्री.ब्रजरत्नदास ने यह मीराँ की रचना मानी है। राजस्थानी विद्वान मोतीलाल मेनारिया ने इसे 'राधाजी नुं

हसर्णु ` नामक रचना के लेखक वल्लभ की रचना माना है। अतएव विद्वानों ने सिद्ध किया है कि, यह मीराँ की रचना नहीं है और यह मीराँ के युग की भी रचना नहीं है।

(७) मीराँनी गरबी (मीराँबाई की गरबी) --

श्री कृष्णलाल झावेरी ने सर्व प्रथम इस पुस्तक का उल्लेख किया। ` गर्बा ` गीत रासमण्डली के गीत की भाँति गाये जाते हैं। मीराँबाई के ऐसे गीतों को ` मीराँनी गरबी ` कहा जाता है, किन्तु इनकी प्रामाणिकता में संदेह भी किया जाता है। इन गीतों पर आधुनिकता की छाप है और भाषा शैली भी आधुनिक है। अत: इसे मीराँ की कृति नहीं कहा जा सकता।

(८) रुक्मिणी मंगल --

डॉ.छोटेलाल ` प्रभात ` ने इस ग्रंथ का उल्लेख किया है। इस रचना की कोई प्रामाणिक प्रति उपलब्ध नहीं है। मीराँ के नाम पर प्रचलित दो-तीन पदों में रुक्मिणी का उल्लेख होने से ही कुछ विद्वानों ने इसे मीराँ की कृति मान लिया।

(९) नरसी मेहता नी हुंडी --

इस संक्षिप्त रचना में नरसी भक्त की प्रसिद्ध लोककथा का वर्णन है। भाषा गुजराती मिश्रित ब्रज है। अंत में मीराँ के नाम की छाप इस प्रकार है --

` येहि हुंडि मीराँ गाय, नाचत गावत परम पद पाय।

` परम-पद पाय ` से स्पष्ट होता है कि, यह रचना मीराँ कृत नहीं। अपने ` परम पद पाने ` का उल्लेख मीराँ स्वयं कैसे करतीं ? अपनी रचना को महत्व देने के लिए किसी परवर्ती रचनाकार ने इसे मीराँ के नाम से प्रसिद्ध किया है।

(१०) चरित -(चरित्र) --

` चरित ` नामक रचना में भक्त पीपाजी का चरित्र वर्णित है। इसका उल्लेख डॉ.प्रभात ने किया है। उनके अनुसार, यह रचना वास्तव में रामानन्दी

सम्प्रदाय के भक्त मीराँदास की है, मेड़तणी मीराँ की नहीं।

(११) फुटकर पद --

ये फुटकर पद ही केवल मीराँ की विश्वसनीय रचनायें हैं। किन्तु कालान्तर में मीराँ छाप के अनेक पद अन्य लोगों द्वारा लिखे गए और वे भी मीराँ की रचनाओं में मिल गए। मीराँ की अपनी रचनाओं में भी कालवश अनेक परिवर्तन होते रहे। अत: मीराँ के प्रामाणिक पदों की संख्या निश्चित रूप से बताना कठिन है, क्योंकि इसमें प्रक्षिप्त अंश जोड़े गए हैं कुछ विद्वान मीराँबाई के पदों की संख्या लगभग दो सौ मानते हैं तो कुछ इससे भी अधिक। इस संदर्भ में आ.परशुराम चतुर्वेदी कहते हैं -- ' वास्तव में मीराँबाई के अनेक पदों की भी, कबीर साहब आदि के पदों की भाँति ही, बहुत कुछ दुर्दशा हो गयी है। जिस किसी ने गाया है, उसने उन्हें अपने रंग में रंगने की चेष्टा की है और अपने अपने विचारानुसार मीराँ के ढ़ाँचे पर कितने ही ऐसे स्वरचित पद प्रचलित कर दिये हैं, जो बिना ध्यानपूर्वक देख-भाल किये मीराँ रचित ही जान पड़ते हैं।'[१३]

निष्कर्षत: मीराँ की अधिकांश रचनायें प्रामाणिक नहीं है। उपर्युक्त सभी रचनायें उनके नाम से प्रचलित हैं। केवल फुटकर पद ही मीराँ की प्रामाणिक रचनायें हैं, किन्तु उनमें भी अन्य लोगों द्वारा मीराँ के नाम से लिखे पद सम्मिलित हैं। इसी कारण मीराँ के अपने पदों की संख्या निश्चित नहीं है।

निष्कर्ष --

मीराँ के जीवन और उनकी रचनाओं से संबंधित सामग्री का अध्ययन करने पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मीराँ अपने युग की सर्व श्रेष्ठ भक्त कवयित्री थीं। वे एक महान आत्मा थीं।

मीराँ का जन्म सं.१५६१ वि.में मेड़ता में कुड़की ग्राम में हुआ। बचपन में ही माता- का देहान्त होने से पितामह राव दूदाजी के संरक्षण में उनका शैशव

बीता । बचपन से ही मीराँ कृष्ण-भक्ति की ओर आकर्षित थीं । उनका पालन - पोषण धार्मिक परिवार में हुआ । इसी कारण शैशव से ही उनकी भक्ति दृढ़ होती गयी ।

विवाह के कुछ समय बाद ही मीराँ को वैधव्य का सामना करना पड़ा । फिर भी उनकी भक्ति में कोई अंतर नहीं आया । उन्होंने कृष्ण को ही अपना आराध्य ,प्रियतम,जन्म-जन्म का साथी तथा अविनाशी वर मान लिया था । भक्ति में लीन मीराँ राजरानी होकर भी लोक-लाज त्याग कर, पैरों में घुँगरू बाँधकर गिरिधर के सामने नृत्य करती थीं, साधु-सन्तों से मिलती थीं । इससे उन्हें अनेक यातनायें सहनी पड़ीं । इन बातों से उनमें विरक्ति पैदा हुई और सब कुछ छोड़कर मीराँ वृन्दावन चली गयीं, फिर वहाँ से द्वारका गयीं और अंत में रणछोड़ की मूर्ति में समा गयीं तथा कृष्णमय हो गयीं । मीराँ का न कोई गुरु था न सम्प्रदाय । वे सम्प्रदाय मुक्त संत थीं ।

मीराँ के नाम पर प्रचलित रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है । फिर भी मीराँ का जो अपना काव्य है वह अत्यंत मधुर है । उनके पद उनके कीर्तिस्तम्भ हैं । मीराँबाई का व्यक्तित्व और कृतत्व अद्वितीय है, अनूठा है, अमर है ।

संदर्भ सूची

१) भगवान दास तिवारी
मीराँ की प्रामाणिक पदावली,
पृष्ठ क्र.२२५ पद ६७ (स)
साहित्य भवन(प्रा.) लिमिटेड, के.पी.कक्कड रोड,इलाहाबाद ।
प्रथम संस्करण-१९७४ ।

२) डॉ.प्रभात
मीराँबाई (शोध-प्रबंध)
पृष्ठ ११९
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई,
प्रथम संस्करण १९६५ ।

३) आ.परशुराम चतुर्वेदी
मीराँबाई की पदावली, पृ.१८
सत्रहवाँ संस्करण १९८३
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।

४) पं.ललिता प्रसाद सुकुल
मीरा-स्मृति ग्रंथ, पृ.५१
बंगीय हिंदी परिषद,कलकत्ता
सन १९४९ ।

५) आ.परशुराम चतुर्वेदी
मीराँबाई की पदावली
पृष्ठ १०४ पद १८
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
सत्रहवाँ संस्करण १९८३

६) आ.परशुराम चतुर्वेदी
मीराँबाई की पदावली,
पृष्ठ १०३ पद १७
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
सत्रहवाँ संस्करण १९८३ ।

७) आ.परशुराम चतुर्वेदी
मीराँबाई की पदावली,
पृष्ठ १११, ११२,पद ३९
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
सत्रहवाँ संस्करण १९८३ ।

८) आ.परशुराम चतुर्वेदी
मीराँबाई की पदावली,
पृष्ठ २४
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
सत्रहवाँ संस्करण १९८३ ।

९) डा.प्रभात
मीराँबाई,पृ.१९१
हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई
प्रथम संस्करण १९६५ ।

१०) आ.परशुराम चतुर्वेदी,
मीराँबाई की पदावली
पृष्ठ १२१ पद ७०
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
सत्रहवाँ संस्करण १९८३ ।

११) डॉ.हासिला प्रसाद सिंह
मीराँ : सृष्टि और दृष्टि, पृ.५९
मूलचन्द एण्ड ब्रदर्स, दिल्ली दरवाजा, फैजाबाद
प्रथम संस्करण १९८२ ।

१२) आ.परशुराम चतुर्वेदी
मीराबाई की पदावली पृ.२६
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
सत्रहवाँ संस्करण १९८३ ।

१३) आ.परशुराम चतुर्वेदी
मीराबाई की पदावली, पृ.२८
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ।
सत्रहवाँ संस्करण १९८३ ।

••